17

सामाजिक स्तरीकरण

* जोसेफ वर्गीस

प्रस्तावना

मनुष्य की सदा से ही यह इच्छा रही है कि समतावादी समाज की स्थापना हो जहाँ सभी मानव-प्राणी बराबरी के दर्जे पर हों पर यह उत्तम विचार अब तक के ज्ञात इतिहास में कभी भी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया जा सका है और आधुनिक समाजों में तो बिल्कुल भी नहीं जिसे अन्य किसी काल की अपेक्षा बराबरी की ज्यादा आवश्यकता है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा किये गये विकास कार्यों के संकेतक यह बताते हैं कि वास्तव में विषमतायें पिछली शताब्दी में देशों के अन्दर और देशों के बीच भी बढ़ी है।

कई एजेन्सियों विभिन्न स्तरों पर आर्थिक एवं सामाजिक विषमता को कम करने के लिए प्रयासरत है। कई आधुनिक राज्यों ने सामाजिक विषमता को कम करने की बड़ी जिम्मेवारी उठाई है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जैसे यू.एन.डी.पी, विश्व बैंक एवं एशियाई विकास बैंक आदि गरीबी कम करने के लिए नीतियों के निर्धारण में एवं संसाधनों के बेहतर इस्तेमाल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वैच्छिक संगठन भी उन विकास कार्यक्रमों को लागू करने में बढ़ चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं जिनका मुख्य उद्देश्य गरीबी को कम करना और लोगों को सक्षम बनाना है। लेकिन स्पष्ट है कि ये प्रयत्न केवल आंशिक रूप से ही सफल हुए हैं।

सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक स्तरीकरण विन्यास में विशेष रूचि रखते हैं। सामाजिक कार्य का उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों और समुदायों की सामाजिक कार्यप्रणाली को सुधारने का है। समाज में सामाजिक स्तरीकरण के प्रकार और उसकी संरचना व्यक्ति और समूह के व्यवहार पर बहुत प्रभाव डालता है। उदाहरणतया, एक केस कार्यकर्ता ऐसे व्यक्ति के साथ सम्पर्क बनाता है जो लगातार व्यापार में घाटा उठाता रहा हो, उसको अपनी साख का गिरने का डर सताता हो। किसी व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि समझने के लिये उसकी श्रेणी और जातिगत स्थिति की जानकारी बहुत जरूरी है। इसी प्रकार समूह कार्य करने के लिये इसी पद्धति के अनुरूप समूह बनाये जाते हैं। सामुदायिक संगठन में इस बात की और ज्यादा आवश्यकता है क्योंकि भारतीय समाज में विकास के अवसर उस समुदाय की श्रेणी और जाति की स्थिती पर निर्भर करती है।

* जोसेफ वर्गीस, विश्व भारती, श्रीनिकेतन, पश्चिम बंगाल

सामाजिक स्तरीकरण : सैद्धान्तिक बोध

सामाजिक स्तरीकरण की परिभाषा धन प्रतिष्ठा और शक्ति जैसे आयामों के आधार पर पद्सोपान स्थितियों में व्यक्तियों के समूहो की व्यवस्था के रूप में की जा सकती है। सामाजिक ढांचे में अपनी एक जैसी स्थितियों के कारण उनमें एक सामान्य चेतना विकसित हो जाती है कि वे क्या हैं, उनकी सांझी समस्यायें कौन सी है, और इन समस्याओं को दूर करने के लिये उन्हें क्या करना चाहिए। सामाजिक स्तर ही सामाजिक विषमता का विशाल रूप है। समाजशास्त्री संकेत करते हैं कि मिश्रित औद्योगिक देश जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में मुख्य सामाजिक विषमता का रूप व्यक्ति आधारित तथा व्यवसाय आधारित विषमताएँ हैं। ऐसी सूचियाँ तैयार की गई है जो विभिन्न व्यवसायों की जनता की नजर में प्रतिष्ठा कैसी है ये दर्शाती है। ऐसी एक सूची के अनुसार एक चिकित्सकीय डाक्टर शिखर पर है तो एक सफाई कर्मचारी सबसे नीचे। एक सामाजिक कार्यकर्ता का दर्जा मध्य में है।

अत्यधिक गतिशील व्यक्ति की श्रेणी का क्रम बदलता रहता है और इस तरह समूह की जागरूकता के विकास में अवरोध पैदा करता है। क्योंकि समूह की जागरूकता के विकास के लिये यह आवश्यक है सामाजिक ढाँचे की स्थिती में स्थायित्व हो तथा व्यक्ति उस समूह में लम्बे समय तक रहे तथा गतिशीलता के पड़ाव सीमित हो। भारत में सामाजिक स्तर के दो मुख्य कारक है जाति एवं श्रेणी जिसके बारे में हम आगे पढ़ेगे।

दो मुख्य सामाजिक चिन्तक हुए हैं कार्ल मार्क्स और मेक्स वेबर, जिन्होने सामाजिक स्तर की प्रकृति, प्रकार और इसके परिणामों के बारे में विस्तार से लिखा है।

मार्क्स द्वारा किए गए समाज के विश्लेषण में आर्थिक घटक प्रमुख भूमिका व्यक्त की है। उसने वर्ग सिद्धान्त के अनुसार मतलब है ऐसे लोगों का एक समूह जो उत्पादन की ताकतों के प्रति एक समान चिन्ता करने वाले है। उदाहरण के लिये आधुनिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति जो मिलों का मालिक है वह पूँजीवादी है और वह प्रत्येक व्यक्ति जो मजदूरी के लिये इन कारखानों में काम करते है, कामगार हैं। इसी प्रकार एक भूमि पति समाज में वे व्यक्ति जिनके पास अपनी जमीन है जागीरदार कहलाते हैं और जो उनके लिए कार्य करते हैं वे कृषक या श्रमिक कहलाते हैं। उसका यह भी विश्वास था कि इन अलग अलग समूहों के हितों के बीच कोई सामंजस्य नही हो सकता अर्थात् एक का फायदा दूसरे की क्षति से ही होता है। जिसका परिणाम यह निकला कि कामगार, श्रमिक अथवा दास इन सबका शोषण अपने अपने समाज में पूंजीवादियों, जागीरदारों अथवा दास-मालिकों द्वारा होता रहा। समाज की अन्य सभी संस्थायें धार्मिक, राजनैतिक या शैक्षणिक किसी न किसी रूप में इस शोषण में सहायक रही है। उदाहरणतया धर्म भाग्यवाद का उपदेश देते हैं जो लोगों को यह बताते हैं कि उनके दुःखों को जा सकता और पीड़ा को शान्ति

से सहने से उनको मृत्यु के बाद स्वर्ग में स्थान मिलेगा। इसी प्रकार सरकारें भी निर्धन वर्गों द्वारा आर्थिक अवसरों में न्याय की माँग को कानून एवं व्यवस्था दुहाई देकर अथवा विद्रोही करार देकर बल प्रयोग द्वारा कुचलने का प्रयास करती है। भारतीय संदर्भ में एक मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुसार जाति एवं कर्म का सिद्धान्त भी उसी का एक पहलू है जो भूस्वामि में एवं कृषकों के शोषणकारी रिश्तों को न्यायसंगत ठहराता है। ये चीजें कृषकों को ये समझने से रोकती है कि उनका शोषण हो रहा है और इस प्रकार वे शोषणकारी व्यवस्था से नही लड़ते। इस तरह मार्क्स ने सामाजिक विषमता के लिये आर्थिक आधार का सिद्धान्त सामने रखा।

मैक्स वेबर, दूसरे एक प्रसिद्ध चिंतक हैं जो मार्क्स के कई विचारों से तो सहमत थे पर कुछ मुद्दों पर असहमत भी थे। वे मार्क्स की इस बात से सहमत थे कि सामाजिक स्तरीकरण की विषमता का प्रमुख कारक आर्थिक है जिससे पदानुक्रम व्यवस्था फलीभूत होती है लेकिन वे इसके लिये कुछ अन्य कारक भी बताते हैं स्तरीकरण। उनके अनुसार स्तरीकरण के तीन आयाम हैं : धन, पद और शक्ति। वेबर ने यह भी समझाया कि वर्गों का निर्माण अकेले उत्पादनकारी शक्तियों के स्वामित्व से नही बनता। यह बाजार की हालात पर भी निर्भर करता है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को दूसरों के मुकाबले में अपनी क्षमताओं का अहसास होता है। उदाहरण के तौर पर एक प्रख्यात वकील या डाक्टर एक खेत का या कारखाने का स्वामी नही होता लेकिन उसके पास विशेष तरह की योग्यता है जो अन्य बहुत से व्यक्तियों के पास नही है। इसी कारण इन पेशेवरों को लुभावनी तनख्वायें दी जाती हैं। वेबर यह ध्यान दिलाता है कि यदि ऐसे व्यक्ति की बाजार में स्थिति अच्छी है तो वह व्यक्ति धनवान बन जाता है और परिणाम स्वरूप उच्च वर्ग की सदस्यता पा लेता है। स्तरीकरण का दूसरा आयाम है और यह किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को नापने का समाज का एक पैमाना है और यह उस व्यक्ति के जीवन यापन जीवनशैली पर आधारित है। एक व्यक्ति जो ऊँचे ओहदे पर स्थापित है उसको सम्मान मिलेगा ही, उसके पद के कारण; न कि उसकी आर्थिक स्थिति के कारण तीसरा आयाम है- शक्ति : जो किसी व्यक्ति की योग्यता है, लोगों की मर्जी के बिना भी उनके कार्यों को प्रभावित कर सकने वाले अपने प्रभुत्व के कारण। उदाहरण के तौर पर गाँव के किसी समुदाय का मुखिया चाहे वह धनी न हो, और न ही उसके पास ऊँचा ओहदा लेकिन समुदाय का मुखिया होने की स्थिती ही उसकी शक्ति बन जाती है। वेबर इस बात से सहमत है कि बहुत से मामलों में ये तीनों तत्व धन, पद और शक्ति : आपस में मिले हुये होते हैं। एक व्यक्ति जिसके पास धन और शक्ति है वह ऊँचा पद भी आसानी से पा लेता है। यद्यपि ऐसा बहुत जगह देखने को मिल जाता है पर सभी जगह ये बात सत्य नही होती। उदाहरणतया एक दलित काम में निपुण होकर अच्छी आर्थिक स्थिति प्राप्त कर लेता है पर उसको जो सम्मान मिलना चाहिये वह नही मिल पाता, क्योंकि हिन्दू धर्म की जाति में उसे निम्नस्तर का माना है। उसकी जाति के कारण। वेबर ने इन आयामों को जोड़ने के बाद सामाजिक स्तर की कुछ विस्तृत व्याख्या प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है।

वर्ग की अवधारणा

एक वर्ग से तात्पर्य है व्यक्तियों का ऐसा समूह जो कमोबेश एक जैसी स्थिति में हैं। धन की प्राप्ति होने के बाद व्यक्ति उन सेवाओं और वस्तुओं को भी पा लेता है जो दुर्लभ होती हैं और लोगों द्वारा मूल्यवान समझी जाती हैं। ये वस्तुएँ और सेवाएं अलग अलग समाज में अलग अलग होती हैं। एक परम्परागत समाज में एक धनी व्यक्ति जमीनें खरीद लेता है या सोना रखता है जबकि आधुनिक समाज में वह स्टाक मार्केट मे धन विनियोग कर सकता है या विलासितापूर्ण कारें खरीद सकता है या छुट्टियों में विदेश भ्रमण कर सकता है। यदि धन को विचार पूर्वक विनियोग किया जाये तो पैसा और पैसे को बढ़ाने में सहायक होता है।

वर्ग अवधारणा और इसकी विशेषताएँ

अधिकांश आधुनिक समाजों में वर्ग आधारित स्तरीकरण पाया जाता है। फिर भी परम्परागत स्तरीकरण के अनेक रूप आधुनिक सामाज में दिखाई देते हैं जैसे जाति प्रथा एवं सामंत प्रथा का भारत में पाया जाना। लेकिन आर्थिक विकास के बल पर वर्ग आधारित स्तर बढ़ता जा रहा है, एक महत्वपूर्ण ढंग से। श्रेणी प्रथा की कुछ मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार हैं -

वर्ग तुलनात्मक रूप से एक मुक्त स्तरीकरण प्रणाली है।

किसी समाज को प्राय: मुक्त या बन्द इस आधार पर कहा जाता है कि इसके सदस्यों के लिये सामाजिक उत्थान की गतिशीलता के लिए किस प्रकार के अवसर उपलब्ध है। इतना ही महत्वपूर्ण है समाज का अपने सदस्यों की गति शीलता के प्रति दृष्टिकोण या व्यवहार। यदि समाज अपने सदस्यों को उच्च स्थान प्राप्त करने के अवसर प्रदान करता है और उन्हें प्रोत्साहित करता है तो उस समाज को मुक्त स्तरीकरण समाज कहते हैं। दूसरी तरफ जो समाज अपने सदस्यों को अग्रसर होने के लिए सीमित अवसर देता है या नही देता है और इसके नैतिक मूल्य सदस्यों को उच्च स्थान प्राप्त करने के प्रयासों में रुकावट करते हैं उस समाज को बन्द स्तरीय समाज कहा जाता है। विकास की गति के साथ साथ स्तरीकरण की प्रणाली खुली और उपलब्धि केन्द्रित बन जाती है।

वर्ग प्रणाली एक खुली स्तरीकरण प्रणाली है। एक व्यक्ति अपनी उपलब्धियों के बल पर वर्ग मे ऊँचा स्थान पा सकता है। ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण सामने आते हैं जो अपनी कठोर मेहनत और उपलब्धियों के बल पर गरीबी से उठ कर लखपति बने हैं। आधुनिक समाज ऐसे व्यक्तियों को सराहना की दृष्टि से देखता है क्योंकि वे दूसरों के लिये भी प्रेरणा स्त्रोत बनते हैं।

आधुनिक समाजों में समाजिक गतिशीलता बुद्धिमत्ता, योग्यता, सक्षमता और व्यक्ति की उपलब्धियों पर आधारित होती है। फिर भी समाजों में, खुलेपन के बावजूद, कुछ तत्व जैसे

'सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, पैतृक स्तर और संसाधन, सामाजिक ताना-बाना और कुछ अनाम तत्व व्यक्ति की गतिशीलता को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। क्योंकि ये तत्व किसी व्यक्ति के स्वयं के नियंत्रण में नहीं होने और उसको लाभान्वित करने हेतु तत्काल संशोधित नहीं किये जा सकते, ये नहीं कहा जा सकता कि आधुनिक समाज भी पूर्ण रूप से मुक्त समाज है। यही वजह है कि आधुनिक समाजों को हम मुक्त समाज की श्रेणी रख सकते हैं। हमारा कहना कि अन्य समाजों के मुकाबले में श्रेणी आधारित समाज अपेक्षाकृत मुक्त समाज है। आगे हम जाति प्रणाली का अध्ययन करेंगें जो अपेक्षाकृत बन्द प्रणाली है।

परम्परागत समाजों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार निर्धारण है जबकि वर्ग आधारित समाज, उपलब्धियों के आधार पर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। दूसरे शब्दों में परम्परागत एवं आधुनिक स्तरीकरण का अन्तर मुख्य रूप से स्थिति और जबरन थोपी गई प्राप्त उपलब्ध स्थिति का है जो सामाजिक स्तरीकरण का आधार है।

आधुनिक समाज में प्रतियोगिता का स्तर बहुत ज्यादा है और वही जीतता है जो सबसे ज्यादा उपयुक्त है। सामाजिक कार्यकर्ताओं को उपलब्धि आधारित समाज के दो निष्कर्षों को याद रखना होगा। क्योंकि उपलब्धियाँ ही पहचान पाती है, व्यक्ति की असफलता को दूसरे लोग निम्न स्तर से देखते हैं और इस प्रकार वे अपनी प्रतिष्ठा खो देते हैं। आप समाचार पत्रों में स्कूली बच्चे के बारे में पढ़ते हैं कि कुछ बच्चे विद्यालय परीक्षा में फेल हो जाने पर आत्महत्या का रास्ता अपना लेते हैं। ये महान उपलब्धियों को पाने की लालसा एवं दूसरों की उच्च आकांक्षा है जो योग्य छात्रों को ऐसा कठोर कदम उठाने को मजबूर करती है। ये महान उपलब्धि आधारित समाज दूसरे स्वास्थ्य, शिक्षा और आवास जैसी न्यूनतम आवश्यकतायें अपने व्यक्तियों को प्रदान करती है ताकि वे प्रतियोगिता के लिये सक्षम हो सके। भारत जैसे देश में हम देखते है कि ये आवश्यक सुविधायें भी सभी को उपलब्ध नहीं है और बहुत से लोग दूसरों से मुकाबला करने में अयोग्य होते हैं, समान स्थितियों में भी बहुत अन्तर आजाता है। इस प्रकार से लोगों के लिए ये स्थिति अनुचित बन जाती है इस प्रकार सरकार और स्वंयसेवी संगठन कल्याणकारी एवं विकास कार्यक्रम आयोजित करते हैं ताकि वंचित व्यक्ति भी योग्य बने एवं समाज की मुख्य धारा में शामिल हो जाएँ।

भारत में वर्ग प्रणाली का प्रभाव

किसी खास वर्ग या समूह की सदस्यता इसके सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित करती है। यह समाज में उनकी स्थिति का अहसास कराती है। लेकिन भारतीय संदर्भ में जाति एवं उससे जुड़े

मुद्दों को ज्यादा अहमियत दी जाती है, भारत में वर्ग की विशेषताएँ पाश्चात्य समाज के मुकाबले एकदम अलग है। भारत में वर्ग एवं जाति के वर्ग साथ साथ विद्यमान हैं और श्रेणी के वर्ग जैसे उच्च, मध्यम या निम्न, ये जाति के वर्गों के समानान्तर है। वे इकट्ठे मिलकर ही किसी व्यक्ति की समाज में हैसियत, शक्ति और प्रतिष्ठा को निर्धारित करते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि उच्च श्रेणी वाले प्रबल रूप से ऊँची जातियों से सम्बन्धित हैं जो एक जातिगत दी गई हैं। यद्यपि पिछले दशकों में इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तो भी यह स्थिति अब भी विद्यमान है।

संसाधनों का संग्रह उनका वितरण, जिस में शिक्षा भी शामिल है, का निर्धारण व्यक्ति की स्थिति के अनुसार होता है। श्रेणी या जाति की भाषा में जो ऊँचाई पर हैं उपलब्ध सुविधाओं का अधिकांश भाग उनके नियंत्रण में है और आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के आस पास या उसके नीचे की स्थिती में पिछड़ा हुआ है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के प्रयासों ने अति प्राप्य एवं कुछ नही की खाई को और चौड़ा किया है, गरीब और अमीर के भेद, शहरी एवं ग्रामीण के भेद, तथा ऊँची जाति, नीची जाति श्रेणी एवं निम्न जाति के भेद को गहरा किया है।

जाति की अवधारणा और इसकी विशेषताएँ

भारत में जाति एक बहुत विवादित विषय है। कास्ट शब्द (CAST) स्पेनिश भाषा के कास्टा (Casta) से लिया गया है जिसका अर्थ है 'नस्ल'। भारत में इसका आशय जाति एवं इससे जुड़े सामाजिक व्यवहार से है। जाति प्रथा भारतीय सामाजिक जीवन को कई तरह से प्रभावित करती है क्योंकि यह अपने सदस्यों को ऊँच-नीच के बन्धनों में बाधती है।

चार वेदों में से सबसे अधिक प्रमुख और प्राचीन ऋगवेद के अनुसार चार वर्ण होते हैं जो श्रेणीबद्ध किये गये हैं- ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। ब्राहमण का कार्य पूजा करना एवं शिक्षा देना एवं शिक्षक का क्षत्रिय का कार्य है युद्ध और शासन करना। वैश्य का अर्थ है व्यापारी एवं अन्य साधारण व्यक्ति। शूद्र इस प्रथा में निम्न स्तर पर है और उनके जिम्मे है तीनों वर्णों की सेवा करना। कुछ इतिहासकारों के अनुसार एक पाचवां वर्ण भी है, अछूत, और उनको समाज का हिस्सा नही माना जाता है। आदिम जाति एवं अन्य धर्मावलंबियों को वर्ण व्यवस्था से अलग रखा गया है।

व्यक्ति किसी एक जाति में जन्म लेता है और जन्म के द्वारा ही उस जाति का सदस्य बन जाता है। एक व्यक्ति अपनी जाति बदल नही सकता। लेकिन ऐसे संयोग मिलते है जहाँ जातियों ने समग्र रूप से अपनी आर्थिक दशा में सुधार करके और अपनी जीवन चर्या में परिवर्तन करके समाज में ऊँची हैसियत का दावा किया है। ऐसे दावे स्वीकार हुए भी और नही भी हुए।

आधिकारिक जातियों ने ऐसे दावो के विपरीत प्रतिक्रिया भी जताई है। लेकिन यदि कही दावे स्वीकृत हुये भी तो जाति व्यवस्था अक्षुण्ण रही है। फिर भी संस्कृतिकरण, अन्तर्जातीय विवाह और शिक्षा के प्रसार ने जाति व्यवस्था की कठोरता अवश्य कम किया है।

एक महान मानवता विज्ञानी जी०एस०घुरये, के अनुसार जाति की छः विशेषताएँ होती हैं।

जातिगत पदानुक्रम

जातिगत पदानुक्रम व्यक्तियों और समूहों के बीच उच्च-निम्न का संबंध है। यद्यपि प्रत्येक समाज एक अथवा दूसरे रूप में पदानुक्रम होता है, परन्तु इसको निर्धारित करने का सिद्धान्त प्रत्येक समाज में अलग अलग होता है। भारत में जाति ही सामाजिक पदानुक्रम का मुख्य आधार है। धार्मिक शुद्धता या अशुद्धता का अंश जाति विशेष के पास कितना है यह जातिगत पदानुक्रम में इसकी स्थिति को निर्धारित करता है। इसमे धन और शक्ति के कारक इतना महत्व नही रखते हैं। उदाहरण के तौर पर एक ब्राह्मण जिसकी आर्थिक हालत भले ही एक राजपूत की तुलना में कमजोर हो फिर भी उसकी धार्मिक शुद्धता के चलते उसे समाज में श्रेष्ठ दर्जा मिलता है।

यद्यपि वास्तव में राजनीतिक एवं आर्थिक तत्व किसी भी जाति की स्थिति का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाजशास्त्रियों का कहना है कि ऊँची धार्मिक स्थिति वास्तव में ऊँची सामाजिक स्थिति का आईना नही होती। उदाहरण के तौर पर एक राजपूत की किसी धार्मिक अनुष्ठान में एक ब्राह्मण के जितनी महत्वपूर्ण भूमिका नही होती लेकिन अन्य मामलों में वह एक ब्राह्मण को कुछ ज्यादा प्रतिष्ठा देने में समर्थ होगा।

समाजशास्त्री एम०एन०श्री निवासन के अनुसार प्रमुख जाति समुदाय मे वह जाति होती है जिसकी धार्मिक स्थिती ऊँची है, संख्या बल ज्यादा है और भौतिक साधन जैसे धन-सम्पदा, भूमि एवं सत्ता तक पहुँच ज्यादा है। इन सभी तत्वों का सम्मिश्रण ही किसी जाति का स्थान ऊँचा बनाता है। यह अलग बात है कि प्रमुख जाति प्रायः गाँव की राजनीति एवं इसकी सामाजिक जिन्दगी में प्रमुख भूमिका निभाती है।

समाज का खण्डों में विभाजन

धन के अनुसार न हो कर जन्म के आधार पर सदस्यता के कारण जातियां विकसित समूहो में विद्यमान हैं। व्यक्ति के अधिकार एवं कर्तव्य जातीय परिषद द्वारा नियंत्रित होते हैं जो प्रत्येक जाति में होती हैं। इन जातीय-परिषदों के पास अपने सदस्यों के सामाजिक जीवन को नियमित रखने के लिये पर्याप्त शक्तियाँ होती हैं। यह अपराध करने पर अपराधी को सजा देने के लिए अपने आदेश को लागू करने के लिये ये कई तरीके अपनाती हैं। कुछ तरह के अपराध जैसे जार

कर्म, मिलावट, दूसरों को चोट पहुँचाना, मारना आदि इनके लिये कई सजाओं का जैसे जुर्माना करना, शारीरिक दण्ड इत्यादि से लेकर मृत्यु दण्ड तक का प्रावधान रखती हैं। कुछ जातियों के अपने अलग अलग देवी-देवता होते हैं जो कि बड़ी धार्मिक परम्पराओं का हिस्सा नहीं होते। इस प्रकार जाति के पास स्वायत्तता के पर्याप्त साधन होते हैं अपने सदस्यों के मुद्दों से निपटने के लिये जो कि सरकारी नियंत्रण से अलग होते हैं।

खान-पान और सामाजिक अन्त:क्रिया पर प्रतिबंध

पके हुये भोजन का आदान प्रदान विभिन्न जातियों के बीच, विशेष नियमों एवं शर्तों द्वारा निर्धारित होता है। कुछ जातियाँ अपने से अलग अन्य जातियों से खास तरह के भोज्य पदार्थ ही ग्रहण करती है सभी तरह के नहीं। खाद्य वस्तुओं को दो रूपों में विभाजित किया गया है पक्का और कच्चा। पक्का भोजन घी में तैयार किया जाता है और श्रेष्ठ समझा जाता है कच्चे की तुलना में जो पानी में पकाया जाता है। ब्राह्मण लोग क्षत्रियों एवं वैश्यों से केवल पक्का भोजन ले सकते हैं लेकिन शूद्रों और अछूतों से नहीं। दूसरी तरफ क्षत्रिय ब्राह्मण से केवल कच्चा भोजन ले सकता है लेकिन वैश्य से केवल पक्का भोजन लेता है जो जाति में उनसे नीचे आते हैं। भोजन के देने और लेने का यह भेद, लेन देन करने वाली जातियों की स्थिति पर आधारित होता है। ग्रामीण स्तर पर पदानुक्रम किस प्रकार कार्य करते हैं इसका वर्णन कुछ समाज शास्त्रियों ने किया है।

इस प्रकार के भेदभाव जातियों के बीच दूर रहती है वहीं पर सामाजिक दूरी भी बनी रहती है। जातीयों में शारीरिक दूरी भी जाति की स्थिति को दर्शाती है। उदाहरण के लिये परम्परागत केरल समाज में एक नैयर एक नम्बूदरी के पास जा तो सकता है पर उसे छू नहीं सकता। जबकि एक अन्य जाति तिया (जो नैयर के मुकाबले निम्न है) के सदस्य को एक नम्बूदरी से 36 कदम की दूरी बनाये रखनी पड़ती है।

विभिन्न जातियों की नागरिक और धार्मिक अयोग्यताएँ एवं विशेषाधिकार

पदानुक्रम प्रणाली में विभिन्न जातियों के विभिन्न अधिकार और विशेषाधिकार होते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि सामाजिक जीवन जाति के आधार पर बंट जाता है। उत्तरी भारत के गाँवों में ऊँची जाति के लोग एक साथ रहते हैं जबकि छोटे जाति के लोगों को गाँव से बाहर रखा जाता है दक्षिणी भारत में सभी जातियों के पृथक पृथक रहने की प्रवृति होती है। उदाहरण के रूप में तमिलनाडू में हम देखते हैं कि स्थान जहाँ हिन्दु रहते हैं उसको 'उर' कहते हैं और वह स्थान जहाँ दलित रहते हैं उसको 'चेरी' कहते हैं। 'चेरी' गाँव से एक खास दूरी पर स्थित होती है।

पुराने उन्नीसवीं सदी के अन्तिम तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों के बहुत से ऐसे उदाहरण देते हैं जो यह बताते है कि किस प्रकार से उन पर यह अयोग्यताएँ जबरन थोप दी गई हैं। उदाहरण के लिये, विभाकोम में, जो राजसी स्टेट ट्रावनकोर का एक कस्बा है, शूद्रों को मन्दिर की गलियों में चलने की मनाही थी। प्रख्यात नेता महात्मागांधी एवं पेरियार जैसे नेताओं द्वारा राष्ट्रव्यापी आंदोलन इन दमनकारी नीतियों के विरूद्ध चलाये जाने से स्थिती बदल गई। इसी तरह पूणे में शूद्रों को सुबह के समय और सध्यां के समय प्रवेश नही करने दिया जाता था। क्योंकि उसकी लम्बी परछाई ऊँची जाति के सदस्यों को प्रदूषित कर देती थी। यह भी देखने को मिलता है कि अपराध करने पर सजा देने में भी भेद भाव वाले तरीके इस्तेमाल होते थे। उदाहरणतय चोरी के लिए पकड़े जाने पर ब्राहमण को केवल जुर्माना भरना होता था जबकि उसी अपराध के लिये एक शूद्र को शारीरिक दण्ड भुगतना होता था।

धार्मिक विश्वासों ने इस पदानुक्रम को लागू किया और शूद्रो को जातिगत स्थिति के कारण कई अच्छे से कार्य करने पड़ते थे। वे मन्दिर के अति पवित्र स्थान गर्भगृह में प्रवेश नही कर सकते थे। यह विशेषधिकार केवल ब्राहमणों को था। ग्रामीण इलाकों में, अभी भी निम्न जातियों के प्रति विद्वेष विधमान है। हम प्राय: जातीय हिंसा की खबर सुनते हैं जबकि निम्न जाति के लोगों को मुख्य पर शादी-जूलुस या शव-यात्रा के लिये ऊँची जातियों द्वारा पाबन्दी लगाई होती है।

काम धन्धों के चुनाव पर पाबन्दी

जन्म से जातिगत सदस्यता प्राप्त होती है और प्रत्येक जाति के काम धन्धे परम्परागत रूप से निर्धारित होते हैं। किसी व्यक्ति की निपुणता और सम्मान का ध्यान रखे बिना जाति बंधन के नियम के चलते उसे जबरन अपनी जाति का ही पेशा अपनाना होता था। इसी प्रकार किसी खास जाति के खास तरह का पेशा खुला होता था। इस प्रकार एक जाति के लिये एक पेशा निश्चित था और वह पेशा केवल उसी जाति के लोग कर सकते थे। उदाहरण के तौर पर ब्राहमण कुल में जन्म होने के कारण एक ब्राहमण ही एक पुजारी बन सकता था। शिक्षा भी जाति के आधार पर दी जाती थी। नौजवान सदस्यों रखा जाता था ताकि जाति के लिये निर्धारित पेशे में निपुणता हासिल कर सके। उस समय कोई एक समान और सार्वभौमिक शिक्षा नही थी। फिर भी समाजशास्त्री बताते हैं कि काम धन्धों पर इतने प्रतिबंध के बावजूद कुछ ऐसे भी व्यवसाय थे जो सबके लिये खुले थे जैसे वस्त्र बुनना, खेती बाड़ी और सैनिक सेवा।

आधुनिक समय से पूर्व विभिन्न जातियों में आर्थिक सम्बन्ध जजमानी प्रथा के रूप में थे। प्रत्येक नौकरी पेशा जाति को अपने मालिकों के लिये कुछ खास कार्य करने पड़ते थे। प्राय: उन्हें पारिश्रमिक वस्तुओं के रूप में और वार्षिक आधार पर दिया जाता था। सेवा करने वाली जातियों और उच्च जातियों में संरक्षक और संरक्षित का संबंध होता था। आधुनिक समय में यह संबंध परिवर्तित हो चुका है।

सगोत्र विवाह

सगोत्र विवाह का अर्थ वह विवाह परम्परा है जिसमें समूह के सदस्यों का विवाह समूह के सदस्यों से होता है। सगोत्र विवाह जाति प्रथा की महत्वपूर्ण विशेषता है। कई जातियों में उप जाति स्तरों पर सगोत्र विवाह नहीं होता है। उदाहरण के लिए अय्यर और अयंगर में परस्पर विवाह नहीं होता यद्यपि दोनों ही तामिल ब्राह्मण हैं।

इस नियम के अपवाद भी है। ये अपवाद उच्च जाति में तथा निम्न जाति में विवाह से संबंधित हैं। जब एक उच्च जाति का पुरूष निम्न जाति की महिला से विवाह करता है तो इसे निम्न जाति में तथा जब एक निम्न जाति का पुरूष उच्च जाति की महिला से विवाह करता है तो इसे उच्च जाति में विवाह कहा जाता है। निम्न जाति में विवाह की अनुमति दी जाती है जबकि उच्च जाति में विवाह पूरी तरह निषेध है। यदि किसी निम्न जाति की लड़की को उच्च जाति के पुरूष और परिवार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो यह उनके लिए बड़ी शान की बात है। इस प्रकार की परम्परा वाले विवाह का एक उदाहरण नम्बूदरी पुरूष का नय्यर महिला के बीच का विवाह है।

अन्य धर्मों में जाति

विश्व के मुख्य धर्मों में जाति केवल हिन्दू धर्म में ही मौजूद है। लेकिन भारत में स्थित सभी धर्मों के सभी धर्मानुयायी जाति विभाजन में बँटे हुए लगते हैं। मुस्लिम, इसाई; बौद्ध तथा सिक्ख विभिन्न प्रकार से शामिल करने और वंशानुगत धर्म का पालन करते नजर आते हैं। इस्लाम और इसाई धर्म मूल रूप से अपने सदस्यों की समानता में विश्वास करते हैं। फिर भी, जाति संबंधी परंपरात दर्शाती है कि कुछ संदर्भों में सामाजिक वातावरण जिसमें धर्म अपनाया जाता है धर्म से अधिक उसे प्रभावित करता है। यही स्थिति सिक्ख धर्म और बौद्ध धर्म में भी लागू होती हैं।

जाति संबंधी अन्तर हिन्दु धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी देखा जा सकता है। सिक्ख धर्म में जाट सिक्ख तथा असली सिक्ख समूह पाए जाते हैं। वे परस्वर विवाह नहीं करते। इस्लाम में चार समूह पाए जिनकी तुलना जातियों से की जा सकती है : सैयद, शेख, पठान तथा मुगल। सैयद दावा करते हैं कि वे पैगम्बर मुहम्मद के वंशज हैं, जबकि शेख दावा करते हैं कि वे पैगम्बर मुहम्मद कुल के वंशज हैं। पठानों और मुगलों को हिन्दुओं में क्षत्रिय की तरह योद्धा माना जाता है। इस्लाम में अन्य समूह व्यवसायों पर आधारित है जो बुनाई, कसाई, मिस्त्री आदि होते हैं। इन समूहों को सैयद, शेख, पठान और मुगलों की सामाजिक माना जाता है। इनमें से अधिकतर समूह अन्तर्जातीय है। इन सदस्यों के बीच सिमित सामाजिक संबंध हैं। फिर भी, किसी भी समूह से यदि कोई धार्मिक ज्ञान में सक्षम है तो वह पादरी या मोलवी बन सकता है।

इसाई धर्म भी एक समतावादी धर्म है तथा इसमें इतिहास के विभिन्न कालों में सभी जातियों से लोगों को धर्मांतरण के लिए प्रेरित किया गया है। इनमें से अधिकतर जातियों ने धर्मांतरण के बाद भी अपनी जाति की पहचान बनाए रखी है जिससे उनका सामाजिक व्यवहार प्रभावित होता है। फिर भी इस्लाम और इसाई धर्म में अपवित्रीकरण और शुद्धता की कोई संकल्पना नहीं है जो हिन्दुत्व का केन्द्र बिन्दु है। इस प्रकार ये धर्म हिन्दुत्व की तुलना में जातिवाद से बहुत कम प्रभावित है।

जाति और सामाजिक परिवर्तन

यद्यपि जाति प्रथा को स्थिर प्रथा माना जाता है तो भी आधुनिकीकरण के कारण इसमें परिवर्तन हुए हैं जिनकी चर्चा निम्नलिखित है:-

जाति और औद्योगिकीकरण

औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया ने कई तरीकों से पारंपरिक भारतीय समाज को प्रभावित किया है। इसने जाति प्रथा को विशेष रूप से प्रभावित किया है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रमिक परिवर्तन जाति श्रेणियों से वर्ग श्रेणियों में हुआ है। यह परिवर्तन विशेषत: शहरी क्षेत्रों में हुआ है। भारतीय समाज में वस्तुओं के विनिमय की जजमानी प्रथा थी। जजमानी प्रथा संरक्षक संरक्षित के बीच थी जिसमें निम्न जाति वस्तुओं के रूप में वार्षिक भुगतान के बदले उच्च जाति के सदस्यों को अपनी सेवाएँ प्रदान करते थे।

औद्योगिक विकास से ऊर्जा के प्राकृतिक स्रोतों के उपयोग और बाजारों के आकार में वृद्धि हो गई है। उद्योगों में वृद्धि होने से श्रमिकों के रोज़गार में वृद्धि हुई जो मज़दूरी के बदले श्रम करते थे। वस्तुओं के उत्पादन स्थल उत्पादकों के आवासों से उद्योगों के विस्तार से श्रमिकों का आंदोलन आरंभिक और घरेलू क्षेत्र से बढ़ कर दूसरे और औपचारिक क्षेत्रों में बढ गया।

औद्योगिक विकास ने विभिन्न जातियों में सामाजिक और आर्थिक संबंधों में परिवर्तन ला दिया है। सेवाएँ करने वाली जातियों को प्राय: ऐसे कार्य मिलने लगे जिनसे उनकी हैसियत तथा आमदनी में वृद्धि होनी लगी। उद्योगों ने विभिन्न जातियों के व्यक्तियों को भी कार्य स्थल पर एक साथ इकट्ठा कर दिया तथा विभिन्न जातियों के बीच यहां पर अंतर/दूरियाँ नहीं रखी जाती थी। फिर उद्योगों में श्रमिकों का चयन और उनकी पदोन्नति योग्यता एवं मेहनत के आधार पर की जाती थी न कि जाति जैसे आरोपित अन्य तथ्यों के आधार पर। धीरे-धीरे उद्योगों में रोजगार ने जाति, शिक्षा और व्यवसायों में संबंधों को धीरे-धीरे बदल दिया। इन परिवर्तनों के बावजूद जाति नेटवर्क ने उद्योगों तथा आधुनिक संगठनों में रोजगार को प्रभावित करता रहा। इसके परिणाम स्वरूप आधुनिक आर्थिक व्यवस्था भी जाति प्रथा के प्रभावों से पूरी तरह मुक्त नहीं हुई है।

जाति प्रथा और शहरीकरण

औद्योगिककरण से एकदम संबंधित शहरीकरण भी एक सामाजिक प्रक्रिया है जो ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित होने का आंदोलन है। शहरी जीवन ने गुमनामी तथा व्यक्तियों के बीच औपचारिक संबंधों को बढ़ावा दिया। शहरों में प्रमुख व्यवसाय दूसरे और तीसरे क्षेत्रों से संबंधित हैं। इन क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर जाति पर आधारित होकर व्यक्तियों की दक्षताओं, परिश्रम, शिक्षा और प्रशिक्षण पर निर्भर करते हैं।

शहरी क्षेत्रों में सामाजिक जीवन भी ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक जीवन से भिन्न होता है। धार्मिक शुद्धता तथा सामाजिक दूरी यहाँ नहीं रखी जा सकती। उदाहरण के लिए बस में अपने साथ बैठने वाले व्यक्ति से उसकी जाति नहीं पूछी जा सकती। इसी प्रकार कोई भी होटल के रसोइये की जाति नहीं जानता और इसलिए पाक कला से संबंधित नियमों का पालन नहीं किया जा सकता। व्यक्ति का घर उसके चुकाए जाने वाले किराये पर निर्भर करता है न कि उसकी जाति पर। इन सभी तथ्यों ने शहरी क्षेत्रों में जाति व्यवस्था को कमजोर कर दिया है।

जाति प्रथा और राजनीतिक प्रणाली

भारतीय संविधान लचीले मूल्यों पर आधारित है जैसे समानता, स्वतंत्रता और भाई-चारा, धर्म निरपेक्षता व नागरिकता। राजनीतिक भागीदारी के लिए आरंभिक इकाई व्यक्ति है। जाति व्यवस्था पूर्णत: इन मूल्यों के विपरीत मूल्यों पर आधारित है। असमानता, विभाजन तथा व्यवसायों के चयन में प्रतिबंध जाति व्यवस्था के मूल्य हैं। भारतीय संविधान प्रत्येक व्यक्ति को वोट देने, चुनावों में भाग लेने का अधिकार प्रदान करता है। समानता तथा भेदभाव से रक्षा से संबंधित विषयों के कुछ महत्वपूर्ण अनुच्छेद है (14, 15, 16 व 17) समाज के सभी कार्य समाज के सभी सदस्यों के लिए उपलब्ध है। शर्त यह है कि समानता के आधार पर वे अन्य भागीदारों से अधिक योग्य और समर्थ हों।

इन तथ्यों का जाति प्रथा और पारंपरिक नियमों एवं नेताओं पर काफी प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के कुछ साल बाद तक संभ्रांत व्यक्ति राजनीति को प्रभावित करने वाली उच्च जाति के सदस्य होते थे लेकिन 1980 के दशक में पिछड़ी जाति एवं दलित लोगों ने राजनीति के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति का अहसास करवाया है। लोकतंत्र सरकार का प्रतिनिधित्व लोकतांत्रिक स्वरूप है और इसलिए इन समूहों की अधिकार संरचना में इन समूहों की वृद्धि से भारतीय समाज अधिक शक्तिशाली होगा और लोकतंत्र जाति व्यवस्था के पारंपरिक स्वरूप को कमजोर भी बनाएगा।

जाति प्रथा और सामाजिक आंदोलन

जाति प्रथा के शोषण को हटाने के लिए राजा राम मोहन राय, ज्योतिभा फूले, डा. अम्बेडकर, पेरियार, नारायण गुरू तथा अन्य कई नेताओं ने अनेक सामाजिक आंदोलन चलाएँ हैं।

जाति प्रथा और सामाजिक आंदोलन

जाति प्रथा के शोषण को हटाने के लिए राजा राम मोहन राय, ज्योतिभा फूले, डा. अम्बेडकर, पेरियार, नारायण गुरू तथा अन्य कई नेताओं ने अनेक सामाजिक आंदोलन चलाएँ हैं।

सुधारात्मक और क्रांतिकारी आंदोलन चलाने वालों में महात्मा गांधी, राजा राम मोहनराय और नारायण गुरू प्रथम श्रेणी में आते हैं। इनका यह विश्वास था कि जाति व्यवस्था को धीरे धीरे और व्यवस्था में ही बदला जा सकता है। सुधारवादियों का सुझाव था कि जाति व्यवस्था में परिवर्तन के लिए उच्च जाति के सदस्यों के हृदय में परिवर्तन और निम्न जाति वालों को शैक्षिक सुविधाएं जुटाना आवश्यक है। दूसरी तरफ अम्बेडकर, फूले और पेरियर जैसे क्रांतिवादी विश्वास करते थे कि जाति व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त करना होगा और किसी भी दशा में इसके जारी रहने से शोषण और उत्पीड़न जारी रहेगा। उनका विचार था कि जाति व्यवस्था प्रचलन के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए सामाजिक आंदोलन, निषेध और कानून का सहारा लेना होगा। इन दो प्रकार के आंदोलनों ने अनेक स्वयं सेवी संगठनों की विचार धारा को प्रभावित किया और आज भी जाति व्यवस्था संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए निर्णय लेना पड़ता है कि इनसे कैसे निपटा जाए।

जाति और विचार धारा

युक्ति संगत और तर्क संगत आधारित प्रबद्ध पश्चिमी विचार औपनिवेशिक काल में भारत पहुँचे। इन विचार धाराओं के फलस्वरूप उदारवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद और राष्ट्रवाद काफी प्रसिद्ध हुए थे और उपनिवेशशिक काल में अंग्रेजों ने शिक्षा व्यवस्था का प्रबंध किया। अनेक उच्च जाति के बुद्धिमान लोग इस शिक्षा व्यवस्था में शिक्षित हुए तथा इन मूल्यों को आत्मसात किया। उनमें से अधिकतर विद्वानों ने अनेक तरीकों से भारतीय समाज को आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया।

जाति और आधुनिक शिक्षा

पारंपरिक शिक्षा का आधार आरोपन था जबकि आधुनिक शिक्षा उपलब्धि मूलक है। विभिन्न जातियाँ अपने छोटे सदस्यों को अपनी जाति के शिल्पों में दक्ष बनाने के लिए उन्हें आरंभिक प्रशिक्षण प्रदान करती थी।

दूसरी तरफ आधुनिक शिक्षा सार्वभौमिक और वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान करती है। ताकि उन्हें विभिन्न व्यावसायिक अवसर उपलब्ध हो सकें।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली छात्रों के मन में समानता, भाईचारा, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को बैठाती है। फिर आधुनिक विद्यालयों में छात्र एक साथ अध्ययन के लिए आते हैं

तथा परस्पर मुक्त भाव से संपर्क करते है। शिक्षा प्रणाली द्वारा प्रदत मूल्यों और विभिन्न जातियों के छात्रों द्वारा परस्पर संपर्क के माध्यम से उत्पन्न उनके अनुभवों ने छात्रों के मन में जाति मूल्यों की पकड़ को ढीला कर दिया है।

आधुनिक समय में शिक्षा सबके लिए खुली लेकिन बहुत खर्चीली हो गई है। उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा सबके लिए विशेषता समाज के अ.जा. अ.ज.जा सहित निर्धन वर्गों के लिए सुलभ नहीं है चूंकि ये शिक्षा से वंचित हैं अत: शक्ति संपन्न नहीं हैं। श्रेष्ठ शिक्षा सबके लिए उपलब्ध कराने की आवश्यकता है ताकि ये वर्ग भी शक्ति संपन्न हो सकें।

भारतीय समाज पर जाति प्रथा का प्रभाव

जाति प्रथा कमजोर तो हो गई है लेकिन निश्चित रूप से यह समाप्त नहीं हुई है। इसका रूपांतरण हो गया है और आधुनिक समाज में इसमें अपने लिए विभिन्न कार्य अपना लिए है। अब हम देखते है कि कैसे जाति प्रथा में परिवर्तन आया और इसने कैसे आधुनिक समाज के अनुरूप में स्वयं को ढाल लिया।

वैयक्तिक जीवन का विभागीकरण

व्यक्ति के जीवन के कुछ क्षेत्रों में जाति प्रथा का प्रभाव कम हो गया है। खाना खाने की आदतों और पारस्परिक सपर्क के क्षेत्रों में जहाँ जाति प्रथा का अत्यधिक प्रभाव था अब यह मामूली है। लेकिन कुछ क्षेत्रों जैसे विवाह के लिए वर या वधु के चयन व सामाजिक नेटवर्क जैसे क्षेत्रों मे अभी भी इसका काफी प्रभाव है। यह मुख्यत: शहरी क्षेत्रों में तो साथ है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी स्थिति भिन्न है। जाति प्रथा के अतिकतर पारंपरिक पहलू आज भी प्रचलित है। जाति प्रथा द्वारा सामाजिक जीवन को प्रभावित करने के तरीके विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग होते हैं।

धार्मिक क्षेत्र में जाति प्रथा में कमी

आजकल लोगों द्वारा पवित्रता और अपवित्रता के विचारों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अब अधिकतर लोग यह विश्वास नहीं करते कि निम्न जाति के व्यक्ति के साथ मिलने या उनके साथ खाने से वे अपवित्र हो जाएंगे। अत: कहा जा सकता है कि जाति प्रथा के लिए धार्मिक औचित्य यदि पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है तो कम अवश्य हो गया है।

सामाजिक संजाल (नेटवर्क) के रूप में जाति

संसाधनों की प्राप्ति के लिए जातियाँ नेटवर्क बनाने का आधार बन गई हैं। नौकरी प्राप्त करने के लिए पदोन्नति प्राप्त करने के लिए, वस्तुओं और सेवाओं की प्राप्ति के लिए, व्यावसायिक नेटवर्क का विकास करने के लिए तथा सरकार आदि के निर्णय को प्रभावित करने के लिए जातियों की एसोसिशसनों का खुल प्रयोग किया जाता है। अपने हितों को पूरा करने के लिए लोग जातियों के आधार पर सक्रिय होने लगते हैं। समाजशास्त्रियों ने बताया है कि किसानों की मांगों से संबंधित आंदोलन जिनका प्रत्यक्षत: जाति से कोई संबंध नजर नहीं आता था, जाति नेटवर्क पर आधारित थे।

पहले की जाति परिषदें जिन्हें लोगों का व्यवहार नियंत्रित करने के लिए न्यायायिक अधिकार प्राप्त थे और उन्हें सरकार तथा जनता से मान्यता प्राप्त थी। लेकिन अब ये परिषदें विवादों को निपटाने के लिए अनौपचारिक अधिकार और दबावों का प्रयोग करती हैं।

जाति चेतना और समुदाय चेतना

आज भी व्यक्ति की पहचान करने और बनाए रखने के लिए जाति आधार है। बृहत समुदाय के साथ व्यक्ति की पहचान के लिए व्यक्ति की जाति की पहचान आड़े आती है। जाति आधारित पहचान लोगों की एकता पर विपरीत प्रभाव डालती है और बहुत बार सामूहिक निर्णय लेने से लोगों को रोकती है। फिर सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रतिफल वितरण पर भी विपरीत प्रभाव डालने में जाति की भूमिका होती है। प्रमुख जातियों को विभिन्न विकास कार्यक्रमों का अधिक लाभ दूसरी जातियों की कीमत पर होता है। सकारात्मक उद्देश्य वाले अनेक सामाजिक आंदोलन भी इससे प्रभावित हो चुके हैं। सामुदायिक संघर्ष को शांति पूर्वक ढंग से सुलझाने के उद्देश्य चलाया गया भूदान आंदोलन संसाधनों वितरण के कारण उच्च जातियों में हुए संघर्ष के कारण असफल हो गया।

इन अनुभवों से अनेक लोगों ने निष्कर्ष निकाला है कि भारतीय गाँवों में सामान्य सामुदायिक चेतना नहीं है यहाँ जाति चेतना और जाति पहचान का अस्तित्व है। समुदाय संकल्पना केवल भ्रम है। एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में आपको ऐसे तरीके निकालने होंगे कि आपके द्वारा लागू विकास कार्यक्रमों का लाभ लक्ष्य जनता तक अवश्य पहुँचे।

जाति चेतना से हिंसा की उत्पत्ति

जाति आधारित सामाजिक संरचनाएँ संघर्ष मूलक होती हैं। यह तीव्र जाति चेतना और परस्पर जाति सदस्यों की मजबूत पहचान का स्वभाविक परिणाम होता है। अधिकतर हिसाँएँ स्थानीय होती हैं और तुच्छ घटनाओं के कारण होती हैं। निम्न जाति के सदस्य को विवाह प्रक्रिया में घोड़े पर बैठने की अनुमति नहीं होती, उन्हें वोट डालने का भी अधिकार नहीं होता, निम्न जातियों के सदस्यों को गांव में प्रवेश या कुछ मार्गों पर चलने की भी अनुमति नहीं होती। उन्हें मंदिर के आयोजनों में भी शामिल नहीं होने दिया जाता। इस जाति की लड़की को अन्य जातियों के पुरूषों द्वारा पीड़ित किया जाता है। भूतकाल में ये अन्यायी क्रियाएँ निम्न जातियों द्वारा चुपचाप सहन की जाती थी। अब वर्ग चेतना के कारण निम्न जातियों में इन दुर्व्यवहारों का विरोध किया जाता है जिससे हिंसा होती है।

इन हिंसक घटनाओं की जड़ों में संसाधनों का असमान वितरण; उच्च जातियों की निम्न जातियों को उनके स्थान पर ही बनाए रखने की आवश्यकता; निम्न जातियों में अपनी निम्न हैसियत के बारे में बढ़ती चेतना तथा स्थिति का प्रतिकार करना तथा राजतंत्र का इन भावनाओं के प्रति उदासीनता जैसे क्षेत्रों में हैं।

जाति संरचनात्मक हिंसा की तरफ ले जाती है :

संरचनात्मक हिंसा का अर्थ वह हिंसा है जो दूसरे के साथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं की जाती अपितु नियमों और कानूनों को ऐसे बनाया जाता है कि वे व्यक्ति के सम्मान को चोट पहुँचाते हैं तथा मानसिक दुख का कारण बन जाते हैं। अस्पृश्यता संरचनात्मक हिंसा का सर्वाधिक विसाक्त रूप हैं। यह उस व्यक्ति के सम्मान को चोट पहुंचाता है। जिस पर यह लागू किया जाता है। इससे उस व्यक्ति का दैनिक जीवन बहुत दूरूह हो जाता है। निम्न जाति के सदस्यों को कुछ सामान्य सुविधाओं में प्रवेश की अनुमति नहीं होती जैसे विद्यालय और मंदिर तथा कुछ सामान्य संसाधनों के प्रयोग की उन्हें अनुमति नहीं होती। निम्न जातियों की महिलाओं को गाँव के कुँओं से जल लेने की अनुमति नहीं होती तथा जल लेने के लिए उन्हें काफी दूर जाना पड़ता है। कुछ कार्य जैसे सरकार की मध्याहन भोजन योजना में रसोइये का कार्य दलितों को नहीं दिया जाता क्योंकि विश्वास किया जाता है कि वे भोजन को प्रदूषित कर देते हैं। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है जाति का धार्मिक पक्ष तो कम हो रहा है लेकिन कुछ लोग अस्पृश्यता को यह कहते हुए न्याय संगत ठहराते हैं कि निम्न जातियाँ शारीरिक रूप से स्वच्छ नहीं होती।

जाति के कारण आधुनिक संगठनों में समस्याएँ

जाति प्रतिबद्धताएँ/निष्ठाएँ आधुनिक संगठनों में समस्या का कारण बनती है बहुत बार लोगों को योग्यता के स्थान पर जाति के आधार पर चुने जाते हैं। इससे संगठन के कार्य निष्पादन

तथा उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जाति के कारण संगठनों में संगठनात्मक भावना पैदा करने में रूकावट आती है। जाति के आधार पर विभाजित ग्रामीण समुदाय की भांति आधुनिक संगठन भी जाति के आधार पर विभाजित होते हैं।

कानूनों और नियमों को सामान रूप से लागू करने में रूकावट के रूप में जाति

आधुनिक नियमों और कानूनों को न्याय संगत ढंग से इस प्रकार बनाया जाता है कि सामाजिक पृष्ठभूमि का ध्यान किए बैगर अनुमति के अनुसार अपवादों की छोड़ कर सभी नागरिक पर समान रूप से लागू किया जाता है। कानूनों का ऐसा सार्वभौमिक कार्यान्वयन आधुनिक लोकतंत्र की बहुत बड़ी आवश्यकता है। लेकिन जाति प्रथा के बारे में विचार सार्वभौमिक है।

उच्च जाति और निम्न जाति के विचारों में अन्तर है कि किस प्रकार जाति प्रथा उनको प्रभावित करती है। उच्च जाति की विचार धारा के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण और निम्न जातियों की वृद्धि ने उनको हानि पहुँचाई है। दूसरी तरफ निम्न जातियों का विचार है कि उच्च जातियों ने समाज में महत्वपूर्ण स्थितियाँ कब्जा किया हुआ है और उनके साथ अत्याचार हुआ है। उच्च और निम्न जातियों के विचारों में निरंतर संघर्ष रहा है। राजनीतिज्ञ इसका प्रयोग अपने स्वार्थों के लिए करते हैं। फिर भी एक प्रत्येक जाति श्रेणी में एक प्रभावशाली वर्ग का उदय हो गया है जो दूसरों की कीमत पर उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाता है।

समाज शास्त्रियों ने भारतीय समाज पर जाति प्रथा के सकारात्मक प्रभावों की भी पहचान की है। इसने भारत में बहुलता को तो बढ़ावा दिया ही साथ ही समाज के जुड़ने के लिए सामाजिक संरचना भी प्रदान की है। जातियों में विभिन्न मूल्य प्रथा, विभिन्न जीवन शैलियाँ, विभिन्न व्यवसाय और फलस्वरूप विभिन्न हित होते हैं। और इससे राजनीतिक और सांस्कृतिक बाहुलता पैदा हुई है। विभिन्न मूल्य व्यवस्थाएँ विभिन्न विचारों को बढ़ावा देती है जो विचारों की विविधता को बढ़ावा दे सकती है। राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में कोई एक समूह आधिपत्य नहीं जमा सकता। प्रत्येक समूह को दूसरे समूहों के साथ समझौता करना पड़ता है ताकि उनके उद्देश्य पूरे हो सके। राजनीतिक वैज्ञानिकों ने कहा है कि यह स्थिति भारतीय लोकतंत्र को गतिशील और जीवंत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है।

यह भी दावा किया जाता है कि पारंपरिक रूप में जाति प्रथा समाज में स्थिरता प्रदान करती है। राजे और दर बार आए और चले गए लेकिन ग्रामीण समुदायों में कोई प्रमुख परिवर्तन नहीं हुए। यह बहस का विषय है कि परिवर्तन न होना सकारात्मक पहलू है या नकारात्मक। किसी भी मामले में इतिहासकारों में विवाद है कि शताब्दियों के बाद भी भारतीय समाज में कोई प्रमुख परिवर्तन नहीं हुआ है। एक अन्य लाभ यह बताया गया है कि जाति प्रथा मनुष्यों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है क्योंकि उसका व्यवसाय निश्चित होता है और संकट के समय उसके साथी उसकी सहायता करेंगे। ये लाभ केवल पारंपरिक समाज में ही पाए जाते है न कि आधुनिक समाज में।

सारांश

इसअध्याय में हमने सामाजिक स्तरीकरण से संबंधित विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है जो समाज का वर्गों में विभाजन करता है। यह वंशानुगत है तथा जो एक या अनेक मानदंडों पर आधारित है। आधुनिक समाजों में स्तरीकरण मुख्यत: तीन आयामों, धन, हैसियत तथा अधिकार पर आधारित है। व्यक्ति के पास स्थित धन संपत्ति उसके संबंधित वर्ग का निर्धारित करती है, समाज में उसकी स्थिति को दिया गया सम्मान उसकी हैसियत निर्धारित करता है तथा संगठन में उसकी स्थिति का निर्धारित उसके पास स्थित अधिकारों से होता है।

भारत में स्तरीकरण के दो आधार वर्ग और जाति है। जाति प्रथा में परिवर्तन तथा भारतीय समाज पर उसके प्रभाव की चर्चा की गई है। सामाजिक कार्यकर्ता का अपना व्यक्तित्व भी इन विचारों से प्रभावित हो सकता है तथा उसकी कार्य प्रणाली समाज में उसकी स्थिति से प्रभावित होती है। सामाजिक कार्यकर्ता के पूर्वाग्रह उसके कार्य में आड़े नहीं आने चाहिए। फिर उसे अपने सभी कार्यक्रमों में जनता की जाति और वर्ग तथ्यों का तथा उन पर उनके प्रभावों का भी ध्यान रखना चाहिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

गुप्ता दिपांकर (1993), सोशल स्ट्रेटीफिकेशन, ऑक्सफोर्ड।

यूनिवर्सिटी प्रैस, न.दि., स्टेर्न, रोबर्ट (1998), चेंजिग इंडिया।

कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न.दि., हरलम्बोस, माइकेल (1989). सोशलायी, मैक्ग्रा हील, सिंगापोर।

कोलेंडा पौलिन (1997), कास्ट इन कोंटम्परेरी इंडिया, बियोंड ऑर्गेनिक सोलिटेरिटी, रावत पब्लिकेसंज़, जयपुर।

घूरे (1986), कास्ट एंड रेस इन मॉडर्न इंडिया, पॉपुलर प्रकाशन, बंबई।